वृत्तपत्राचे नांव :- हिन्दी मिलाप
वृत्तपत्र प्रकाशन ठिकाण :- हैद्राबाद
वृत्तपत्र पान नं.:- पुरवणी 3
दिनांक :- 21-10-2007
कटिंग नंबर: ....

उपनिषदों में शक्ति तत्व

प्राचीन काल के आत्मदर्शी महापुरुषों ने, जो अपनी सूक्ष्म अमोघ अन्तर्दृष्टि अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान के कारण 'ऋषि' कहलाते थे- इस तत्व का उद्घाटन किया कि ब्रह्म में अन्तर्निहित शक्ति ही सृष्टि का आदिकारण है। उन लोगों ने ध्यानावस्थित होकर यह अनुभव किया कि ब्रह्म की निजशक्ति ही, जो उसके स्वरूप में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है, कारण है। ब्रह्म ही समस्त कारणों का संचालक है, जिसमें काल और अहं भी सम्मिलित हैं।(श्वेताश्वतरोपनिषद् 1 । 3)।

यहां आलंकारिक ढंग से गुण को गुणी से भिन्न कर दिया गया है और यह प्रत्यक्ष हो जाएगा कि श्रुति ने अन्ततोगत्वा इस गुणशक्ति को गुणी से अभिन्न माना है। यही पराशक्ति है, यही अन्तश्चेतना है और यही सूक्ष्म और कारण शरीर की संचालिका है, यही आंतरिक और बाह्य समस्त वस्तुओं को प्रकाश देने वाली है। इस शक्ति को सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न माना गया है और इसका बहृवृचोपनिषद् में इस प्रकार वर्णन आता है- वह (शक्ति) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की परम शोभा है। वह सत्, चित्, आनंद की लहरी है। वह भीतर-बाहर व्याप्त रहती हुई, स्वयं प्रकाशित हो रही है। (बहृवृचोपनिषद् 1-ख)।

वह समस्त दृश्य पदार्थों के पीछे रहने वाली वस्तु-सत्ता (प्रत्येक-चिति) है। वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् और अनात्म है। (बहृवृचोपनिषद् 1-ख)।

वह नित्य, निर्विकार, अद्वितीय परमात्मा की परम दिव्य चेतना की आदि अभिव्यक्ति है। (बहृवृचोपनिषद् 1-ख)।

श्रीमद्भगवद्गीता, जो सभी उपनिषदों का सार है, यह घोषणा करती है कि 'आत्मा और मूल प्रकृति दोनों अनादि हैं और विकारशील दृश्य पदार्थों और गुणों की उत्पत्ति प्रकृति से होती है। (गीता अध्याय 13 ।19)। गीता का यह भी कथन है कि आत्मा प्रकृति द्वारा प्रकृति-जन्य गुणों को भोगता है और जिस गुण में उसकी आसक्ति होगी, उसी के अनुसार भला या बुरा जन्म उसका होगा। (गीता अ. 13 ।21)। श्रीमद्भगवद्गीता यह भी घोषणा करती है कि प्रकृति से भिन्न कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह स्वयं पुरुष के अंदर स्थित है। वह पुरुष की ही प्रकृति है और इसी हेतु सदा आत्मा के साथ रहती है। आत्मा की इस प्रकृति के दो विभाग हैं- अपरा और परा। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, यह आत्मा की अष्टधा अपरा शक्ति है और इससे भिन्न दूसरी जीव शक्ति आत्मा की परा शक्ति है, जो इस विश्व को धारण करती है। (गीता 7 ।4-5)। प्रकृति के इन दो विभागों में पहला इंद्रियगोचर तथा बाह्य है और दूसरा है इंद्रियातीत तथा बुद्धिगोचर। ये ही ब्रह्म के दो मुख्य रूप हैं, जिनके अंदर सबका अन्तर्भाव हो जाता है।

वस्तुतः ब्रह्म के दो रूप हैं- जड़ और चेतन। जड़ असत् है, परिवर्तनशील है, विनाशशील है। चेतन सत् है, वही ब्रह्म है, वही प्रकाश है। (मैत्र्युपनिषद् 5 ।6)।

शक्तों ने परब्रह्म परमात्मा के उपर्युक्त दोनों रूपों को एकत्र कर 'शक्ति' के नाम से निर्दिष्ट किया है। महर्षि बादरायण के ब्रह्मसूत्रों में, जो उपनिषदों की एक समन्वयपूर्ण तथा समालोचनात्मक व्याख्या है, उससे हमें इसी सिद्धांत की प्रतिध्वनि मिलती है। महर्षि बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद में सृष्टि के कारण संबंधी भिन्न-भिन्न प्रचलित सिद्धांतों का विश्लेषण किया है और (1) जड़ प्रकृति, (2) परमाणुओं के संयोग, (3) भाव और संस्कार, (4) शरीर और आत्मा का अनादि संयोग, (5) निष्क्रिय आत्मा का प्रकृति के साथ संयोग तथा (6) शक्ति की आत्मा से सर्वथा स्वतंत्र सत्ता का तर्क द्वारा खंडन किया है और अन्ततोगत्वा वे इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि यदि इसके विपरीत यह स्वीकार कर लिया जाए कि चैतन्यादिविशिष्ट शक्ति ही सृष्टि का कारण है तो इस सिद्धांत से हमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि उस स्थिति में ब्रह्म और शक्ति एक ही हो जाते हैं। (ब्रह्मसूत्र 2 । 2 । 44)। वेदान्त यह भी स्वीकार करता है कि ब्रह्म के अंदर शक्ति स्वभाव से ही मौजूद रहती है और विश्व की उत्पत्ति उसी शक्ति से होती है।

इस सर्वव्यापी, चिन्मय पराशक्ति की- जो सगुण और निर्गुण, निराकार और साकार दोनों, अथवा संक्षेप में जिसे परब्रह्म परमात्मा का पर्यायवाची शब्द कह सकते हैं- समस्त हिंदू जाति अनादि काल से पूजा और ध्यान करती आ रही है। संसार के किसी भी भाग में प्रचलित किसी धर्म से उपरिनिरूपित शक्तिवाद का कोई विरोध नहीं है। शाक्त लोग सभी धर्मों में एक ही परम दिव्य शक्ति की अभिव्यक्ति देखते हैं। वे इसी अनन्त पराशक्ति को ही विश्व चेतन का कारण समझते हैं और इस पराशक्ति को वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्म से अभिन्न मानते हैं। उनके मत से मोक्ष अथवा निरतिशय स्वतंत्रता इस परमशक्ति के अथवा अपरिमेय आत्मा के वास्तविक स्वरूप में स्थित होने का ही नाम है। और यह स्थिति सच्चे ज्ञान और सच्ची भक्ति के तुल्य अनुपात में सम्मिश्रण से ही प्राप्त हो सकती है। सच्चा ज्ञान सर्वव्यापक आत्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध करा देता है और सच्ची भक्ति अनन्य प्रेम को जगाती है, जिसका पर्यवसान अहंकार के संपूर्ण समर्पण में हो जाता है। तंत्रों में इस महाशक्ति की उपासना का पूरा विकास हुआ है, जिसका अंतिम उद्देश्य वेदान्त का अद्वैतवाद ही है। इस दृष्टि से 'कुलवर्णतंत्र' और 'महानिर्वाणतंत्र' सबसे आगे बढ़े हुए हैं। परमात्मा में स्थित हो जाना ही सर्वोत्कृष्ट पूजा है, इसके बाद दूसरे नंबर में ध्यान की प्रक्रिया आती है।

सबसे निम्न श्रेणी की पूजा में स्तुति के कुछ पद गाए जाते हैं और प्रार्थना के कुछ शब्द कहे जाते हैं और ब्रह्मपूजा को ही अधम से भी अधम कहा गया है। (महानिर्वाणतंत्र)।

पुराणों ने भी शक्ति का यही रूप माना है, जो वेदांत में सगुण, निर्गुण-उभयात्मक ब्रह्म का माना गया है। श्रीदेवीभागवत में जगज्जननी शक्ति की एक स्तुति है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जाएगी। वह इस प्रकार है-

जगत् का नियंत्रण करने वाली, सृष्टि की आदिभूत माता प्रकृति-देवी की मैं सदा वंदना करता हूं, मैं पुनः कल्याणी, कामदा, सिद्धिदा और ज्ञानदा का अभिवादन करता हूं। मैं तुम्हारी वंदना करता हूं, जो सच्चिदानंदरूपिणी हो और जो विश्व को प्रकाश देने वाली हो। मैं पंचकृत्यों का विधान करने वाली भुवनेश्वरी की बारंबार वंदना करता हूं। मैं बारंबार सर्वाधिष्ठात्री, कूटस्था की वंदना करता हूं। मैं पुनः सृष्टिकारिणी को नमस्कार करता हूं। मैं हृदय की अधिष्ठात्री, प्रकृति की अधिष्ठात्री देवी की वंदना करता हूं। मैं तुम्हारे चरणों में वंदना करता हूं। तुम मुझे संपूर्ण ज्ञान की ज्योति प्रदान करो। ओ शुभे! ओ देवि! ओ सर्वार्थदे शिवे! मैं तुम्हारी वंदना करता हूं।

शाक्तमत के अनुयायियों ने ठीक-ठाक उपनिषदों के अनुसार शक्ति-तत्व का प्रतिपादन करके अनन्तरवर्ती धार्मिक साधकों के ज्ञान और साधन की सुगमता के लिए वेदान्त की सृजनकारिणी चैतन्यशक्ति के सिद्धांत की ही पुष्टि की है। हां, इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि वेदान्त के 'परब्रह्म' को तंत्रों में 'पराशक्ति' कहने लगे। इस प्रकार अंतर तो केवल परिभाषिक शब्दों में ही रह गया, तत्वतः मूल में तो सर्वथा एकता ही है। मां काली के प्रसिद्ध उपासक स्वामी रामकृष्ण परमहंसदेव ने अपने व्यक्तिगत जीवन में यह दिखला दिया कि भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धांतों में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है। अपने साधक-जीवन के भिन्न-भिन्न काल में अपनी दिव्य समाधि की अवस्था में भिन्न-भिन्न धर्मों के भिन्न-भिन्न मतों के भिन्न-भिन्न पंथों का उन्होंने अनुसरण किया और उनके मन में संसार के किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात अथवा द्वेष नहीं था। हृदय के भीतर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि सभी धर्म एक ही उद्देश्य की ओर ले जा रहे हैं और वह उद्देश्य है ब्रह्म का ज्ञान। इसी हेतु अपने जीवन के पिछले भाग में वे बहुधा शक्ति की साधना में निमग्न रहने लगे और किसी भी धर्मविशेष की पारिभाषिक विधि अथवा साम्प्रदायिक सिद्धांत का आश्रय उन्होंने नहीं लिया- यही है शाक्त-धर्म!

-श्री श्रीधर मजूमदार